ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-4* July- 2021
Anthology : The Research

आधुनिकतावादी दृष्टि और लोकसाहित्य
Modernist Vision and Folklore

Paper Submission: 12/07/2021, Date of Acceptance: 25/07/2021, Date of Publication: 26/07/2021

कविता त्यागी
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
मेरठ कॉलेज, मेरठ,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

लोकसाहित्य में सहज अर्थात् अपरिष्कृत, अकृत्रिम, अनगढ़, 'अनपालिश्ड' और यहाँ तक कि 'रफ' एवं परम्परागत लोकमानस की अभिव्यक्ति होती है। लोकसाहित्य सनातन परम्पराआंे की सांकेतिक अभिव्यक्ति का साहित्य है जिसमें सामाजिक चेतना के संस्कार सुरक्षित रहते है। आधुनिकता के मूल में वैज्ञानिक दृष्टि हैं और परम्परा के मूल सांस्कृतिक दृष्टि दोनों का अन्तिम लक्ष्य ऐसी मानवीय चेतना की अभिवृद्धि है जो जीवन को सहजता समग्रता देने में समर्थ है। परम्परा पर आधारित होने के कारण लोक साहित्य को प्रायः आधुनिकता के समावेश के लिए अनुपयुक्त मान लिया जाता है। क्योंकि परम्परा तो सतत् गतिशीलता का ही नाम है भले ही उसकी गति कितनी ही धीमी या अदृश्य क्यों ना हो। रूढ़ि और आधुनिकता में प्रायः विरोध होता है। यद्यपि आधुनिकता में मी नयी रूढ़ि, रीतियाँ बनती चलती है और फिर उनका विरोध भी होता है। विकास की यही प्रकिया है।

In folk literature, there is an expression of spontaneous i.e. unrefined, unrefined, rough, 'unpolished' and even 'rough' and traditional folk psyche. Loksahitya is the literature of symbolic expression of Sanatan traditions in which the values of social consciousness are preserved. At the root of modernity is the scientific vision and the ultimate goal of both the cultural vision of the tradition is the growth of such human consciousness which is capable of giving life a simple totality. Being based on tradition, folk literature is often considered unsuitable for the incorporation of modernity. Because tradition is the name of continuous movement, no matter how slow or invisible its speed may be. There is often a conflict between orthodoxy and modernity. Although in modernity new customs, customs keep on being formed and then they are also opposed. This is the process of development.

मुख्य शब्दः अकृत्रिमता, अनपालिश्ड, अपरिष्कृत, इहलौकिकता, यांत्रिकता, मुकामी, औत्सुक्य।
Unpolished, Unpolished, Crude, Supernatural, Mechanical, Flimsy, Autsukya.

प्रस्तावना

'लोक' क्या है? इस शब्द की व्युत्पति कैसे हुई एवं कब हुई? इस सम्बन्ध में कोई निश्चित मत अब तक प्राप्त नहीं हो सका है। 'सिद्धान्तकौमुदी' में 'लोक' शब्द संस्कृत के लोक-दर्शन धातु में 'घञ्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ माना गया है। सम्भवतः यह शब्द लौह-युग में जन्मा है तथा उस समय यह 'लोध' कहलाया गया एवं 'घ' महाप्राण ध्वनि सरलीकरण के कारण 'ग' अल्पप्राण ध्वनि में परिवर्तित होकर 'लोग' बन गया होगा। तदनन्तर 'ग' सघोष ध्वनि 'क' अघोष ध्वनि से रूपान्तरित होकर 'लोक' बना होगा। 'लोक' संज्ञा पु० सं० 'लुक' धातु से निष्पन्न हुआ प्रतीत होता है। जिसका अर्थ है-देखना या देखने वाला, अतः वह समस्त मानव समूह जो इस कार्य को करता है, लोक कहला सकता है। यही 'लुक' धातु अंगरेजी में 'लुक (स्ववा) के रूप में प्रचलित हुई दीखती है जिसका अर्थ किया जाता है देखना। 'Local' 'Locality' संज्ञा शब्दों का निर्माण किया गया, जिनका क्रमशः अर्थ है स्थानीय, स्थानिक, मुकामी तथा स्थान, 'जगह, इलाका, मुहल्ला आदि। अतः डा० सत्येन्द्र के अनुसार-'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।

प्रायः यह माना जाता है कि लोकसाहित्य में सहज अर्थात् अपरिष्कृत, अकृत्रिम, अनगढ़, 'अनपालिश्ड और यहाँ तक कि 'रफ'एवं परम्परागत लोकमानस की अभिव्यक्ति होती है।

उद्देश्य

आधुनिक नागरिक सभ्यताप्रसूत अत्यल्पसंख्यक विशिष्ट आभिजात्य वर्ग जो सहज अल्हड़ लोकजीवन को यह मानकर स्वयं को जन सामान्य से इतर रखने में ही अपनी गुरूता और विलक्षणता की सुरक्षा समझता है, विश्व के एक विशाल वर्ग की आत्मा भी वाणी लोकसाहित्य के विभिन्न रूपों, लोकगीत, लोकवार्ता, लोकनाट्य कहावत आदि में अनादिकाल से अक्षुण्ण है। अपनी अस्मिता, मनीषा, प्राण शक्ति को परखने और पहचानने के लिये हमें बार-बार लोक और साहित्य के पास लौटकर जाना पड़ेगा।

लेकिन ऐसा स्वीकार करना तभी संभव है जब सहजता, अपरिकार, अकृत्रिमता, अनगढ़ता और आधुनिकता में विरोध हो। यदि आधुनिकता से तात्पर्य केवल तार्किकता यांत्रिकता और औद्योगिक सभ्यता, वैज्ञानिकता, इहलौकिकता, पश्चिमी अंधानुकरण, फैशनपरस्ती, आयातित विचारधारा अति विशिष्ट एवं रुग्ण वैयक्तिकता, नास्तिकता एवं अराजकता से ही है तब तो निश्चित रूप से ऐसी आधुनिकता की अभिव्यक्ति लोकसाहित्य में नहीं होती, लेकिन आधुनिकता से तात्पर्य यदि

सामयिक समस्या, नवीन जीवन मूल्य जड़ता एवं रूढ़ि-विरोध, बदलते हुए दृष्टिकोण, संघर्ष एवं समन्वय से विकसित होने वाली जीवन-पद्धतियाँ, वास्तविकता, विषमताएँ, वास्तविकता की कठोरताएँ शोषण अन्याय और दुराचार के विरोध से है तो ऐसी आधुनिकता लोकमानस को जिस रूप में प्रभावित करती है उससे सहज ही प्रेरित होकर लोकसाहित्य का अज्ञात अनाम रचयिता उसे वाणी देता है। यह तो ठीक है कि जिस रूप में कोई वैचारिक आन्दोलन जितनी शीघ्रता से बुद्धिजीवियों को प्रभावित कर अपनी साहित्यक अभिव्यक्ति प्राप्त कर लेता है वैसी गति से लोक-जीवन को प्रभावित न कर पाने पर लोक कवि के द्वारा उसकी अभिव्यक्ति नहीं हो पाती, लेकिन यदि कोई आन्दोलन, लोकमानस में रम जाता है या उसे झकझोर देता है तब उसका प्रतिफल लोक-साहित्य में सहज रूप में हो ही जाता है। मँहगाई, दहेज, बेकारी भुखमरी सम्बन्धी लोकगीत इसके प्रमाण हैं। लोक-साहित्य केवल मधुर, करुण, वीर रसात्मक ही नहीं है। लोक जीवन की सामान्य से सामान्य प्रवृत्ति, हलचल, उथल-पुथल, सामाजिक जीवन की समस्याएँ ही नहीं, अभिशाप भी, धार्मिक, कर्मकाण्ड की अवांछनीयता आदि लोकसाहित्य का विषय रही हैं और यह सब आधुनिकता के अन्तर्गत ही आता है।

आधुनिकता न तो अपने आप में एक मूल्य है, न परिणति। अतीत या परम्परा से कटी हुई आधुनिकता का कोई महत्त्व नहीं। यह विकास की एक जटिल प्रक्रिया है जो अकस्मात् घटित नहीं होती धीरे-धीरे हमारी अस्मिता का अंग बनकर प्रकट होती है। जहाँ डॉ० रामदरश मिश्र आधुनिकता को केवल समयगत परिवर्तन न मानते हुए एक मूल्य भी मानते हैं और उसे परिवेशगत यथार्थ चेतना की अनुभूतिगत और बौद्धिक पकड ़ से जोड़ते हैं, वहीं डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने 'आधुनिकता को एक प्रक्रिया के रूप में माना है मूल्य के रूप में नहीं। क्योंकि मूल्य रूढ़ हो जाता है और प्रक्रिया गतिशील होती है। महावीर दाधीच ने आधुनिकता को आज के मानव की अस्तित्व-संकट एवं मूल्य-संकट की अनुभूति माना है।

लोक-साहित्य परम्परा का अंग है, उस परम्परा का, जो दीर्घकाल से हमारे पूर्वजों के चिन्तन तथा व्यवहार से गुजरती हुई हम तक आई है। इस लम्बे मार्ग में अनेक पड़ाव भी हुए, पर जो निरन्तर गतिशील रहती हुई आज आधुनिकता से जुड़ गई है। लोक-साहित्य परम्परागत मान्यता और विश्वास से जुड़ा है। फिर भी उसका नैरन्तर्य इस बात का सूचक है कि वह पंगु और निर्जीव रहने की बजाए परिस्थितियों के अनुसार चलना और विकसित होना जानता है। लोक-मानस ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियों को औत्सुक्य के साथ देखता है। उससे उत्पन्न चेतना को स्वीकृति देता है और अपने गीतों तथा कहानियों में उसे पिरो लेता है। इसलिए वह वर्तमान को अपनी सम्पूर्ण सामाजिक देनों के साथ आज भी जीवित है।

लोकसाहित्य अपने काल की सामाजिक चेतना का यथार्थ प्रतिबिम्ब है इसीलिए युगानुरूप वह अपने में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक प्रवृतियों का समावेश करता चलता है यही उसकी जागरूकता उसके अन्दर स्थित आधुनिकता के तत्त्व को स्पष्ट करती है। उदाहरणार्थ लोकसाहित्य के अन्तर्गत ग्रामों में खेली जाने वाली नौटंकियाँ या लोक-नाट्यों में तत्कालीन स्थितियों पर सटीक व्यंग्य मिलते हैं। यहाँ तक कि परिनिष्ठत साहित्य भी उन्हीं लोकसाहित्य की परम्पराओं को ग्रहण कर लेता है। खुसरों की मुकरियाँ यदि लोकसाहित्य के अन्तर्गत आ जाती हैं तो भारतेन्दु की मुकरियाँ भी लोकसाहित्य का लिखित रूप ही हैं, जिनमें व्यंग्य और तर्कों का सहारा लेकर अंग्रेजी राज, फैशनपरस्ती, आदि नवीन विषयों का समावेश कर लिया गया है।

परम्परा पर आधारित होने के कारण लोक-साहित्य को प्रायः आधुनिकता के समावेश के लिए अनुपयुक्त मान लिया जाता है। क्योंकि परम्परा और आधुनिकता में विरोध प्रायः स्वीकार किया जाता है जबकि परम्परा तो सतत् गतिशीलता का ही नाम है भले ही गति कितनी ही धीमी या अदृश्य क्यों न हो। हाँ, रूढ़ि और परम्परा में अन्तर है, रूढि और आधुनिकता में प्रायः विरोध होता है । यद्यपि आधुनिकता में भी नयी रूढ़ि, रीतियाँ बनती चलती हैं और फिर उनका विरोध भी होता है। विकास की यही प्रक्रिया है। यदा-कदा गति तीव्र और प्रचण्ड होकर कोई विस्फोट कर देती है। अतः आधुनिकता जब जनजीवन को स्पर्श करने लगती है, उसमें रम जाती है, इसको झकझोर देती है जब लोकमानस से निकलकर वह लोकसाहित्य की विभिन्न विधाओं में व्यक्त होती है।

लोक-साहित्य का एक छोर पुरातनता से अवश्य जुड़ा होता है पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि पुरातनता को ही लोक-साहित्य का पर्याय स्वीकारा जाए। जिस भाँति और जिस रूप में आज के दिन भी हमारे समाज में लोक-तत्त्व विद्यमान है, उसी प्रकार लोक-साहित्य भी अपने प्राचीन स्वरूप में वांछित परिवर्तन लाते हुए प्रतिपल नूतन रूप में सर्जित हो रहा है। उक्त कथन को हम इतर शब्दों में उस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं कि लोक-साहित्य मनुष्य जाति के जन्म जितना प्राचीन होते हुए भी सद्य-प्रसूत शिशुसम नूतन है।

वर्तमान समय में परंपरा से चले आ रहे लोक-गीतों, कथाओं, गाथाओं, नाट्यों, लोकोक्तियों, बाल-खेलों, उत्सवों, संस्कारों आदि को एक ओर नये रूपों में व्याख्यायित किया जा रहा है तो समानान्तर दूसरी ओर इनकी नव-रचना-प्रक्रिया भी जारी है।

लोक साहित्य को मैं शाश्वत साहित्य की कोटि में परिगणित करती हूँ और शाश्वत साहित्य की सामयिक सार्थकता स्वतः सिद्ध है। इसके समर्थन में कुछ भी कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लोक-साहित्य की प्रासंगिकता को हम बड़े पैमाने पर इन बिन्दुओं के सहारे स्पष्ट कर सकते हैं-

1. लोक-साहित्य के वे अंश जो परम्परित होते हुए भी वर्तमान संदर्भो को उजागर करने की क्षमता रखते हैं।
2. लोक-साहित्य की विधाओं में निरूपित सामयिक समस्याएँ एवं इन विधाओं के माध्यम से आधुनिक विचारों का प्रचार-प्रसार ।
3. परस्परित साहित्य में प्रस्तुत युग-सापेक्ष परिवर्तन।
4. लोक-साहित्य-वर्तमान शिक्षा-पद्धति हेतु सफल एवं श्रेष्ठ माध्यम
5. श्रेष्ठ साहित्यकारों द्वारा प्रभावात्मक आत्माभिव्यक्ति हेतु लोक-धर्मी विधाओं का चयन।

बहुत गहराई और सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर विदित होगा कि नाना विषयों पर समग्र विश्व के निवासियों का चिन्तन एवं तदनुकूल व्यवहार प्रायः एक सा होता है। फलस्वरूप विश्व लोक-साहित्य में अभिव्यक्ति अनेक तथ्य समान से होते हैं। विश्व के सभी देशों में किसी जमाने में सामन्ती व्यवस्था अवश्य रही है। निर्धन, शोषित एवं प्रपीड़ित जनता अपनी विचाराधारा को परोक्षतः लोक-साहित्य के माध्यम से ही अभिव्यक्ति देती रही है। सामंती-व्यवस्था में आश्रय पाने वाले एवं उसी व्यवस्था ही हिमायत करने वाले, बिके हुए साहित्यकारों ने कभी भी अपने साहित्य के माध्यम से जन-साधारण के मूक रुदन को प्रकट नहीं होने दिया

क्योंकि ऐसा करने पर उन्हें अपनी रोटी छिन जाने का भय जो बना रहता था। वे साहित्यकार होकर भी साहित्यकार की कसौटी पर खरे नहीं उतर सके। आम जनता सदा-सर्वदा से सामाजिक स्तर पर असमान-वितरण-पद्धति के विरुद्ध एवं समानता की भावना में विश्वास करने वाली रही है। सामन्तों के लौह-श्रृंखला-बद्ध शिकंजों में कसते-कसते आम जनता ने यही अनुभव किया कि हम सब मिलकर ही अपनी कठिनाईयों को दूर कर सकते हैं। इन तथाकथित पूँजीपतियों एवं सामन्तों से किसी प्रकार की सहायता की वांछा रखना व्यर्थ है। साधारण व्यक्ति भली-भाँति यह जानता था कि शोषित की मदद शोषित ही कर सकता है अन्य कोई नहीं। इसी ठोस विचारधारा को 'चिड़िया और कौवे' की कहानी के माध्यम से सबल एवं सार्थक अभिव्यक्ति दी गई है। यह कहानी अत्यप्ल परिवर्तन से विश्व के लगभग साठ से भी अधिक देशों में अति प्राचीन काल से चली आ रही है। कौवा चिड़िया से प्रत्यक्षतः मोती पर प्रकारान्तर से उसका अधिकार छीनता है। स्वाधिकारी वंचिता चिडिया सामन्ती-व्यवस्था के पोषकों (क्रमशः बरगद का वृक्ष, सुथार, राजा, रानी, चूहा, बिल्ली, कुत्ता, लकड़ी अग्नि, समुद्र, हाथी ... ये सभी पात्र प्रतीकात्मक हैं एवं सामन्ती व्यवस्था के पोषक तथा समर्थक हैं।) के सम्मुख फरियाद लेकर पहुँचती है पर सर्वत्र उसे निराशा ही निराशा हाथ लगती है। अन्ततोगत्वा शोषितों का प्रतीक स्वीकारी गई और धूल में रेंगने वाली चींटी असहाय चिड़िया की सहायतार्थ आगे आती है तभी सारी सामन्ती व्यवस्था चिड़िया एवं चींटी (शोषित समाज) के समक्ष घुटने टेक देती है। वर्तमान युग में संवेग प्रसार पाने वाली मार्क्सवादी विचाराधारा का भी आधारभूत सिद्धान्त है-मजदूर एकता एवं मूलमंत्र है शोषित ही शोषित के दुःख-दर्द को जान सकता है और वही शोषित की सहायता करने में अपना सर्वस्व लुटा सकता है। इस गम्भीरतम विषय की सच्चाई को बखूबी उक्त क्रमशवृद्ध-लोक-कथा में बड़े सरल तथा मनोरंजक ढंग से निरूपित किया गया है। आज महती आवश्यकता है-लोकसाहित्य की विविध विधाओं में निरूपित उक्त प्रकार के तथ्यों को वर्तमान संदर्भो से जोड़ते हुए उद्घाटित करने की। ये अपने पारम्परिक विधान में वर्तमान समस्याओं को सँजोए हुए हैं।

प्रत्येक देश में उपलभ्य लोक-साहित्य की विविध विधाओं का सम्यक् विश्लेषण करने से स्वतः ज्ञात हो जाता है कि इनमें समाज की अनेक सामयिक समस्याएँ चित्रित हैं। उदाहरणस्वरूप हम राजस्थान प्रदेश में प्रचलित 'छारु रौ परताप' शीर्षक एक लोक-कथा प्रस्तुत कर रहे हैं। इस कथा के अनुसार एक गाँव के ठाकुर की प्रसिद्धि वैद्य के रूप में हो गई। उसके पास सभी प्रकार के रोगों के लिए केवल दो ही उपचार थे- (1) रोगी को थोड़ी सी शराब पिला देना या (2) रोगी के शरीर पर लोहा गर्म करके 'डाम' लगा देना। जिसने कभी शराब चखी भी न हो तो पहली बार थोड़ी सी शराब पीने पर उसे हल्का सा नशा आ जाता और स्वल्प समय के लिए उसे अपने रोग का विस्मरण हो जाता तथा गर्म लोहे से शरीर के किसी भाग के जल जाने से रोगी पहले वाले रोग को कुछ देर के लिए भूल जाता। फलस्वरूप ठाकुर की झूठी वैद्यगिरी चल निकली। एक दिन एक बुढ़िया अपने पोते (जो बड़ी खाँसी से ग्रस्त था) को लेकर ठाकुर के पास पहुँची। ठाकुर ने बालक को दवा के रूप में दारु पिला दी। जिज्ञासावश बुढ़िया ने ठाकुर से पूछ ही लिया- 'क्या इससे मेरे पोते की खाँसी नष्ट हो जायेगी?' हँसते-हँसते ठाकुर ने उत्तर दिया- 'डोकरी तू भी पागल लगती है। अरे, शराब पीने से तो राज्य नष्ट हो गये हैं, फिर इस नाकुछ चीज खाँसी की क्या औकात'।

कथा तो छोटी ही है पर संदेश बड़ा है। हमारे देश में जहाँ शराबबंदी हेतु रोज जो आन्दोलन किये जा रहे हैं, ऐसी उपदेशपरक लोक-कथाएँ आकाशवाणी से अथवा विविध मंचों से प्रसारित करवाकर इन आन्दोलनों को भली-भाँति प्रभावकारी एवं सफल बनाया जा सकता है। प्राचीन होते हुए भी इन लोककथाओं की वर्तमान परिस्थितियों में अर्थवत्ता है, क्योंकि हमारे यहाँ लाखों करोड़ों रुपया शराब में फूंक रहे हैं। परिणामतः व्यक्ति के आर्थिक उत्थान एवं राष्ट्रीय विकास में बाधा उपस्थित होने लगती है। एक लोक प्रचलित सोरठे में भी इसी भाव को चुनौती के स्वर में दर्शाया गया है-

''खरचौ घणौ खराब, आमद तूं करणौ अधिक।
सब दिन पीणी शराब, दुःख रौ मारग देवला॥

वर्तमान परिपेक्ष्य में लोक साहित्य की विवेचना से एक यह तथ्य भी हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है कि परम्परित साहित्य में यथावश्यक युग-सापेक्ष परिवर्तन या तो आ चुके हैं अथवा आ रहे हैं। जैसे-जैसे जीवन की परिस्थितियाँ बदलती हैं, उसी के अनुरूप मानव-मानस की विचाराधाराएँ भी परिवर्तित होती हैं। अब से कुछ वर्ष पूर्व तक स्त्री के मानस में लोक-लाज के भय से माँ एवं बहिन की अपेक्षा सास तथा ननद का आदर भाव प्रकट रूप से अधिक रहता था, पर समय ने पलटा खाया। स्वतन्त्र भारत की स्वतन्त्र नारी व्यावहारिक दृष्टिकोण लेकर आगे आई। अब उसे सास प्राणलेवा एवं ननद असहनीय सी प्रतीत होने लगी। फलतः उसने मृत्यु सम कष्टप्रद प्रसव-बेला में सास या ननद के स्थान पर अपनी माँ या बहिन को बुलाना प्रारम्भ कर दिया। सामाजिक परिवर्तन को लोक-गीत ने अंगीकार तो अवश्य किया, परन्तु इस बात को परम्परित नैतिक मर्यादा के अनुरूप न पाकर अपना स्वर इस प्रकार अलापा

'जच्चा ने ऐसा जुल्म किया,
'परिस्थितिवश'
अंगरेजी जापा शुरू किया।
नणदल को बुलाना बन्द कियां, बहनड़ को
बुलाना शुरू किया।'

यह सब परिस्थितिवशात् हुआ। आज जब कौशल्या सी सास ही नहीं रही, तो फिर बहू के परिवर्तित स्वभाव को दोष देना व्यर्थ है। खैर हमारा यहाँ यह तात्पर्य है कि लोकसाहित्य बदलते सामाजिक मूल्यों को अपने कलेवर में स्थान देता हुआ वर्तमान परिथितियों के अनुरूप निर्मित होता रहता है। आज भी समाज में अनेक अवसरों पर विविध लोक-गीत गाये जाते है, जिने कलेवर एवं लय को पूर्ववत् रखते हुए भी गायिकाओं ने उनके कथ्य में युगानुकूल परिवर्तन कर दिये हैं। आज इन गीतों की नायिका अपने प्रिय के समक्ष बैलगाड़ी अथवा रथ में बैठने की इच्छा प्रकट नहीं करती, वह तो इस युग के द्रुतगामी वाहन हवाई जहाज में बैठने की कामना व्यक्त करती है, चाहे इसके लिए प्रिय को कितना ही व्यय भार वहन करना पड़े। वह इस युग में रहकर किसी से पिछड़ना नहीं चाहती। कल लोग यह नहीं कहें कि लोक-नायिका कुछ जानती ही नहीं। उसने अपने आधुनिक-बोध को इस परिवर्तन द्वारा व्यक्त किया है।

'रुपिया लागै जितरा लागौ
'उबाऊपन' बैठो हवा-जहाज में।'

प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा लोक-साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से ही दी जाय। बालक का अविकसित मानस इनके माध्यम से कई गुरु गम्भीर बातें भी सहज ही में ग्रहण कर सकता है। इससे वर्तमान शिक्षा पद्धित का उबाऊपर भी समाप्त हो जाएगा। श्रीयुत सामर जी ने कठपुतलियों के माध्यम से ऐसे नाना उदाहरण प्रस्तुत कर दिये जो बालक के प्राथमिक शैक्षिक जीवन में बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। लोकोक्तियाँ नीति-शिक्षण, आदर्श स्थापन एवं चारित्रिक निर्माण में जहाँ

अत्यधिक सहायक सिद्ध हो सकती हैं, वहां पहेलियाँ शिशु की सहज जिज्ञासा को जागृत तथा तृप्त करने का श्रेष्ठ आधार हो सकती हैं और लोक-गीतों की मधुर स्वर-लहरी विद्यार्थी का अच्छी तरह से आह्लादन कर सकेगी, क्योंकि इनमें शिक्षार्थी आत्मिक नैकट्य की अनुभूति करता है। मूढ़ राजकुमारों को कुशल व्यवहारविद् बनाने हेतु ही पंचतन्त्र की कहानियों की सर्जना हुई थी।

लोक-साहित्य में लोकगीतों एवं गाथाओं का उपयोग समर्थ एवं प्रतिभाशाली कवि अपनी कृतियों में करते आ रहे हैं। वीरगाथकाल से ही यह प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। भक्तिकाल में भी सूफी कवियों ने प्रेमाख्यानकों में लोककथाओं का भरपूर उपयोग किया है। तुलसी-सूर जैसे समर्थ कवियों ने अवधी, ब्रज के लोकगीतों से काफी सामग्री ली है। आधुनिक युग में भारतेन्दु एवं उनके समकालीन अनेक कवियों ने लावनी, कजरी, और विरहे लिखे हैं। सुभद्राकुमारी चौहान ने 'खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' प्रचलित लोकगीत के आधार पर ही लिखा है। इधर बंगला की प्रख्यात कथाकार महाश्वेता देवी ने आदिवासी जीवन को लेकर 'जो जंगल के दावेदार', 'चोट्टिमुण्डा और उसका तीर' 'घहराती घटाएँ' लिखा है उनमें तो लोकमानस में उमड़ने-घुमड़ने वाले भावोद्रेक को ही मूलतः आधार बनाया है जिनकी सहज और प्राणवन्त अभिव्यक्ति मुण्डा लोकगीतों में हुई थी।

प्रत्येक देश की लोक-कथाओं में एक बहुत बड़ा वर्ग सर्प कथाओं का मिलता है। इन सर्प-कथाओं में नारी और पुरुष के यौन संबंधों को प्रतीकात्मक ढंग से नैसर्गिक रुप में अभिव्यंजित एवं विश्लेषित किया गया है। वर्तमान युग में अनेक प्रख्यात मनौवैज्ञानिकों ने इन सर्प-कथाओं का संबल ग्रहण कर मानसिक विकारों का अध्ययन करने में सफलता पाई है। इस दृष्टि में भी लोक-साहित्य की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महत्ता स्पष्ट है।

इस सम्बन्ध में जितना लिखा जाए, वही कम होगा। आज विश्व स्तर के अनेक कवि लोक-धर्मी शैलियों में साहित्य-सर्जना कर स्वयं को धन्य मानते हुए अपनी सफलता का दावा कर रहे हैं। सिनेमा जगत में लोक-धुनों पर जिन गीतों की रचना होती है, वे गीत अपेक्षतया अधिक प्रसिद्धि पाते हैं।

लोक-साहित्य की महत्ता हर युग में रही है, वर्तमान युग में है और भविष्य में भी निर्विवाद रूप से रहेगी। एक ऐसे प्रलय दिन की कल्पना कीजिए- जब सब कुछ जल-प्लावित हो जायेगा। अभिजात्य साहित्य के अमूल्य ग्रंथ-रत्न नष्ट हो जायेंगे। पर यदि सौभाग्यवश एक भी मनु बच रहा तो सम्पूर्ण लोक-साहित्य भी पुनर्जीवित होकर नये सिरे से मानव-जाति का पथ प्रदर्शन करेगा।

निष्कर्ष

आधुनिकता जिस मोहयुक्त जागरूक दृष्टि और कृति का जन्म देती है, परम्परा उसका संरक्षण करती है। दरअसल परम्परा कोई अचेतन वस्तु नही, यह देश काल-परिस्थितियों के अनुसार विकसित होती रहती है 'जातीय संस्कार और परम्परा से आधुनिकता और आधुनिकीकरण का रिश्ता एक समानान्तर तलाश कर रहा है'। लोक साहित्य अतीत और परम्परा का संचय हैं, आधुनिकता वर्तमान में अतीत की जागरूकता को रेखांकित करती है, परम्परा में आधुनिक संदर्भों की व्यवस्था देती है। इसीलिए लोकसाहित्य सदा सामाजिक परिस्थितियों और अनिवार्यताओं के अनुकूल ढलता जाता है। वह अपनी जमीन के जरूरी रिश्तों को कायम रखता है और लोकधर्मिता से उसे जोड़ता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ0 धनंजय वर्मा आलोचना की रचना यात्रा, पृ0-154*
2. *सिद्धान्त कौमुदी, पृ0 4017।*
3. *अंग्रेजी-हिन्दी कोश- फादर कामिल बुल्के, पृ0 374।*
4. *वहीं, पृ0 373।*
5. *म0हि0सा0लो0ता0 अध्य0, पृ0 3।*
6. *हिन्दी कहानीः एक अन्तरंग परिचय, पृ० 60*
7. *हिन्दी कहानीः एक नई दृष्टि, पृ० 25*
8. *आधुनिकता और भारतीय परम्परा, पृ० 117*